दैनिक जागरण

पश्चाताप मनुष्य के अंत:करण को पवित्र करने वाला भाव है

चुनाव प्रचार का समापन

आखिरकार राजनीतिक दलों और साथ ही देश की जनता को लंबे चुनाव प्रचार से मुक्ति मिली। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि चुनाव प्रचार के समापन के मौके पर भाजपा अध्यक्ष ने भी संवाददाता सम्मेलन किया और कांग्रेस अध्यक्ष ने भी। एक ओर जहां राहुल गांधी ने अपनी बात कहने के साथ ही संवाददाताओं के सवालों के जवाब दिए वहीं दूसरी ओर भाजपा की प्रेस कांफ्रेंस में केवल अमित शाह ने ऐसा किया। चूंकि उनके साथ प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी संवाददाता सम्मेलन में उपस्थित हुए थे इसलिए यह अपेक्षा की जा रही थी कि वह भी सवालों के जवाब देंगे, लेकिन उन्होंने यह कह कर इन्कार कर दिया कि यह तो पार्टी अध्यक्ष की प्रेस कांफ्रेंस है। यह एक प्रश्न हो सकता है कि भाजपा अध्यक्ष की ओर से बुलाई गई प्रेस कांफ्रेंस में नरेंद्र मोदी को सवालों के जवाब देने चाहिए थे या नहीं और उनके जवाब पार्टी नेता के तौर पर माने जाते या फिर प्रधानमंत्री के तौर पर, लेकिन यह भी अपनी जगह सही है कि उनसे सवालों के जवाब की उम्मीद की ही जा रही थी। इसलिए और भी, क्योंकि पांच साल के अपने कार्यकाल में उन्होंने एक बार भी विधिवत तरीके से किसी संवाददाता सम्मेलन को संबोधित नहीं किया। इसे लेकर सवाल भी उठते रहे हैं। अब जब उन्होंने अपनी सरकार की वापसी का दावा किया तब फिर यह उम्मीद की जाती है कि वह इस सवाल के लिए गुंजाइश न रहने दें कि वह प्रेस कांफ्रेंस का सामना क्यों नहीं करते? यह सही है कि प्रधानमंत्री ने विभिन्न अवसरों और खासकर चुनाव के मौके पर मीडिया से बातचीत की है, लेकिन प्रेस कांफ्रेंस का आयोजन कर सवालों के जवाब नहीं दिए। आखिर वह इसकी अनदेखी कैसे कर सकते हैं कि शासनाध्यक्षों की ओर से संवाददाता सम्मेलन आयोजित कर पत्रकारों के सवालों के जवाब देने का चलन पूरी दुनिया में है और इसे स्वस्थ लोकतंत्र की निशानी माना जाता है।

करीब-करीब एक ही समय पर कांग्रेस और भाजपा के शीर्ष नेताओं की ओर से आयोजित प्रेस कांफ्रेंस में एक उल्लेखनीय अंतर यह भी देखने को मिला जहां भाजपा अध्यक्ष अमित शाह और प्रधानमंत्री ने दावे के साथ यह कहा कि उनकी सरकार फिर से बनने जा रही है और पर्याप्त बहुमत से बनने जा रही है, वहीं राहुल गांधी ने ऐसा कुछ कहने से इन्कार कर दिया। उनका तर्क था कि जनता के निर्णय के बारे में वह कुछ नहीं कहना चाहते। वह केवल यही कहने तक सीमित रहे कि उन्होंने नरेंद्र मोदी को घेर दिया है और उनकी वापसी नहीं होने वाली। चुनाव नतीजों को लेकर अपने पक्ष में कोई दावा न करने के पीछे कुछ कारण हो सकते हैं, लेकिन इसे उनके आत्मविश्वास से जोड़कर भी देखा जा सकता है। जो भी हो, चंद दिन बाद ही यह साफ हो जाएगा कि किसकी सरकार बनने जा रही है, लेकिन अच्छा यह होगा कि राजनीतिक दल इस पर विचार करें कि चुनाव के दिनों में जैसा कटु माहौल बन जाता है उससे कैसे बचा जाए? उन्हें कम से कम यह तो सुनिश्चित करना ही चाहिए कि यह माहौल चुनाव के साथ ही खत्म हो जाए।

बालिका निकेतन

देहरादून स्थित बालिका निकेतन में बालिका की आत्महत्या का मामला बेहद चिंताजनक है। इस पूरे घटनाक्रम ने बालिका निकेतन और नारी निकेतन की सुरक्षा व्यवस्थाओं पर सवाल खड़े कर दिए हैं। ऐसा पहली बार नहीं है जब बालिका निकेतन की व्यवस्थाओं को लेकर सवाल उठे हैं। राज्यपाल बेबी रानी मौर्य ने गत वर्ष यहां सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं को लेकर सख्त नाराजगी जताते हुए उनमें सुधार के निर्देश दिए थे। यहां तक कि व्यवस्थाओं की मासिक रिपोर्ट नियमित रूप से राजभवन भेजने को कहा गया। बावजूद इसके व्यवस्थाओं में कोई बदलाव नहीं आया। इससे पहले दिसंबर 2017 में पांच बालिकाओं के यहां से भागने का प्रकरण सामने आया था। शासन ने इसकी जांच कराई, जिसमें कई चौंकाने वाली बातें सामने आईं, मगर इस पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं हुई। जून 2018 में स्कूल जाते समय एक बालिका गायब हो गई थी। सितंबर 2018 में यहां बालिकाओं को संक्रमण का सामना करना पड़ा। इस घटना के सार्वजनिक होने के बाद यहां स्वास्थ्य जांच की व्यवस्था शुरू की गई। वहीं, नारी निकेतन में भी संवासिनियों से मारपीट, अच्छा भोजन न दिया जाना और रहने की व्यवस्थाओं को लेकर पूर्व में सवाल उठते रहे हैं। इन पर सरकार व शासन ने कई बार सख्ती की, लेकिन इसके बावजूद यहां इस प्रकार की घटनाओं का बढ़ना प्रबंधन व विभागीय लापरवाही को प्रदर्शित करता है। यदि ऐसा नहीं है तो फिर क्यों यहां इस तरह की घटनाएं लगातार सामने आ रही हैं। हाल में बालिका निकेतन में किशोरी की मृत्यु प्रकरण में भी कई खामियां सामने आई हैं। मसलन, यहां तो न एंबुलेंस हैं और न ही कोई डॉक्टर। इस कारण यहां के बच्चों के बीमार पड़ने पर उन्हें इलाज के लिए सरकारी अस्पतालों में लाना ले जाना पड़ता है। इन व्यवस्थाओं पर न तो कभी शासन ने गंभीरता दिखाई और न ही विभाग ने। बालिका व नारी निकेतन में अहम बात यह है कि यहां नाबालिग बालिकाओं व महिलाओं को उचित मार्गदर्शन की जरूरत होती है ताकि उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाया जा सके। सरकार व प्रशासन को इस मुद्दे की संवेदनशीलता समझकर उचित कदम उठाने होंगे।

मोदी और अंतरराष्ट्रीय मीडिया

प्रो. निरंजन कुमार

आखिर अमेरिका, ब्रिटेन, पाकिस्तान की मीडिया में बिल्कुल समान नजरिये वाली खबरें और लेख कैसे सामने आ रहे हैं?

अवधेश राजपूत

अमेरिकी पत्रिका 'टाइम' के हालिया अंतरराष्ट्रीय संस्करण के आवरण पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तस्वीर के साथ शीर्षक छपा-'इंडियाज डिवाइडर इन चीफ' यानी भारत को विभाजित करने वाला मुखिया। इसकी मीडिया और सोशल मीडिया में काफी चर्चा रही। विपक्षी नेताओं और खासकर कांग्रेसियों ने इसे अपने पक्ष में भुनाने की कोशिश भी की। यह बात और है कि इसी आवरण कथा में राहुल गांधी को कुछ भी न सीखने वाला बताया गया था। अंतरराष्ट्रीय मीडिया में लोकसभा चुनाव के सिलसिले में पीएम मोदी के बारे में ऐसे लेखों और खबरों की भरमार है। टाइम के अतिरिक्त द इकोनॉमिस्ट, न्यूयॉर्क टाइम्स और पाकिस्तान के 'डॉन' और अन्य अखबारों को इस संदर्भ में देखना प्रासंगिक होगा कि पिछले लगभग डेढ़ महीने में उन्होंने भारतीय चुनाव को किस रूप में चित्रित किया? उनकी रिपोर्टिंग के पीछे की मानसिकता क्या है और भारतीय अभिजन वर्ग से इसका क्या संबंध है? 'टाइम' की आवरण कथा के लेखक आतिश तसीर हैं जो पाकिस्तान के पूर्व राजनेता सलमान तसीर के बेटे हैं। वह भारत के अलावा पाकिस्तान भी जाते रहते हैं। वह अमेरिकी नागरिक हैं और बतौर लेखक पहचान रखते हैं। आतिश तसीर ने लिखा कि क्या विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र मोदी सरकार के पांच साल और झेल सकता है? इस लेख में अर्थव्यवस्था और विकास के मोर्चे पर मोदी की नाकामी, किसानों की बदहाली, मुसलमानों के खिलाफ गौ-रक्षकों की हिंसा और उनके साथ तथाकथित भेदभाव आदि मुद्दों पर मोदी को घेरा गया है। तथ्यों के आधार पर देखें तो आर्थिक मोर्चे पर मोदी सरकार के पांच वर्ष मनमोहन सिंह के पिछले पांच साल से बेहतर नजर आते हैं। मनमोहन सिंह के समय आर्थिक विकास की औसत दर जहां 6.7 फीसद रही वहीं मोदी सरकार के दौरान यह दर 7.6 प्रतिशत रही। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि ने भी भारत को दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था की मान्यता दी। टाइम के इसी अंक के एक अन्य लेख में भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए मोदी को एकमात्र उम्मीद के तौर पर देखा गया, लेकिन उसकी चर्चा नहीं हुई।

यदि किसानों की स्थिति देखें तो उनकी बदहाली के पीछे विभिन्न सरकारों की बेरुखी या गलत नीतियां रहीं। मोदी सरकार ने किसानों की दशा सुधारने के लिए पहली बार ठोस कदम उठाए। फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य को लागत से डेढ़ गुना किया। मूल्य बढ़ोतरी के साथ सरकार ने यह भी सुनिश्चित किया कि कृषि उपज की खरीद भी हो। 2009-14 में जहां सिर्फ सात लाख मीट्रिक टन दलहन और तिलहन खरीदे गए वहीं 2014-19 में 94 लाख मीट्रिक टन की खरीद हुई। इसके अतिरिक्त किसान फसल बीमा योजना और छोटे किसानों के लिए 6000 रुपये सालाना किसान सम्मान योजना लागू की गई ताकि दशा को सुधारा जा सके। कथित गौ-रक्षकों द्वारा मुसलमानों के खिलाफ हिंसा की घटनाएं अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण और निंदनीय हैं। हिंसा का सहारा लेने वालों को सख्त सजा दी जानी चाहिए। मोदी ने अक्सर ऐसे तत्वों की भर्त्सना की और उनके खिलाफ कड़े कदम उठाने के लिए राज्य सरकारों को निर्देश भी दिए। इसके बावजूद उतनी सख्ती से कार्रवाई नहीं हो पाई जितनी जरूरी थी, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि कानून-व्यवस्था राज्यों के अधिकार क्षेत्र वाला विषय है।

मोदी सरकार पर जाति-पंथ के आधार पर भेदभाव का आरोप पूरी तौर पर गलत है। शौचालय, गैस सिलेंडर, बिजली, आयुष्मान समेत अन्य अनेक योजनाओं का लाभ बिना किसी भेदभाव सभी गरीबों को दिया गया। देसी-विदेशी मीडिया में भले ही कुछ लोग मोदी को मुसलमान विरोधी के रूप में चित्रित करें, लेकिन अरब देशों में उनका आदर है और उन्हें सम्मानित भी किया गया है। सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात, दोनों ने उन्हें अपने सर्वोच्च सम्मान से नवाजा है। सच्चर समिति की रपट इसका साक्षात प्रमाण है कि खुद को मुस्लिम हितैषी बताने वाले राजनीतिक दलों ने मुसलमानों का कितना हित किया है? दूसरी ओर मोदी सरकार में अल्पसंख्यक कल्याण संबंधी योजनाएं कहीं प्रभावी ढंग से लागू की गईं। साफ है कि टाइम की आवरण कथा तथ्यों की सही तरह से छानबीन किए बगैर लिख दी गई। इस कथा में मोदी का अंध विरोध साफ झलकता है।

चुनावों के दौरान न्यूयॉर्क टाइम्स की कुछ खबरों के शीर्षक देखें-'भारत में चुनाव, किसान पीड़ित। 'मोदी का डरावना अभियान', 'मोदी के शासन में हिंदू राष्ट्रवादी उभार से भारत और विभाजित', 'चुनाव अधिकारी की घने जंगल में यात्रा ताकि अकेला हिंदू पुजारी मतदान करे।' गौर करें कि यह नहीं लिखा गया कि भारत का चुनाव आयोग इतना मुस्तैद है कि निकोबार में आदिवासियों के लिए समुद्र में नाव से मीलों यात्रा करके मतदान की व्यवस्था कराई गई, जबकि आमतौर पर ये आदिवासी मतदान नहीं करते। द इकोनॉमिस्ट की एक खबर का शीर्षक देखें- 'भारत के चुनाव अभियान में गंदी चालें, मतदाताओं को डराना, प्रतिद्वंद्वियों को धमकाना, नेताओं की खरीद'। शीर्षक के ठीक नीचे भाजपा कार्यकर्ताओं का फोटो छपा था। एक अन्य रपट- 'नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत की सत्तारूढ़ पार्टी लोकतंत्र के लिए खतरा', 'अल्पसंख्यकों में भय'। पाकिस्तानी अखबारों 'डॉन', 'द नेशन', आदि अखबारों की सुर्खियां भी अलग नहीं- 'मोदी ने जहरीले धार्मिक राष्ट्रवाद का माहौल बनाया', 'ईवीएम समीक्षा की विपक्ष की मांग ठुकराई।' इस शीर्षक से लगता है मानों सरकार ने इसे ठुकराया है, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने विपक्षी मांग ठुकराई थी।

'भारत में 20 लाख ईवीएम लापता,' ऐसी बेबुनियाद रिपोर्ट एक भारतीय अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका में छपी। एक चैनल में भी यही खबर चलाई गई। इसका चुनाव आयोग ने खंडन किया। 'चुनाव में बड़े पैमाने पर मतदाता वंचित,' ऐसी खबर एनजीओ की एक कथित वामपंथी पत्रिका में प्रकाशित की गई। इस खबर के अनुसार तीन करोड़ मुस्लिम और चार करोड़ दलित मतदाता सूची से गायब हैं। यह वह एनजीओ है जिसे 2006 में फोर्ड फाउंडेशन ने विभिन्न गतिविधियों के लिए दो लाख डॉलर अनुदान दिया था। ध्यान रहे विदेशी धन को लेकर बने एक पुराने कानून का मोदी सरकार ने कड़ाई से पालन करते हुए जब एनजीओ वालों से हिसाब मांगा तो रातों-रात 20,000 एनजीओ गायब हो गए थे। मोदी से उनकी नाराजगी स्वाभाविक है। साफ है कि झूठी खबरें चुनाव आयोग और सरकार को बदनाम करने के मकसद से छापी गईं। अगर इनमें सच्चाई होती तो मोदी विरोधी खेमा कोर्ट पहुंच चुका होता।

क्या यह हैरानी की बात नहीं कि अमेरिकी, ब्रिटिश, पाकिस्तानी मीडिया में बिल्कुल समान नजरिये वाली खबरें और लेख छप रहे हैं? क्या यह इत्तफाक इसलिए है, क्योंकि वामपंथी विचारक, लुटियन बुद्धिजीवी और विदेशी धन पा रहे एनजीओ मोदी विरोध के नाम पर एकजुट हैं? सच्चाई जो भी हो, इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जैसा लेख 'टाइम' में छपा वैसे न जाने कितने भारतीय मीडिया में छप चुके हैं। ऐसे लेख मोदी के प्रति दुराग्रह को भी जाहिर करते हैं और बुद्धिजीवियों के एक वर्ग की कुंठा को भी।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

आपदा में तब्दील होता जलवायु परिवर्तन

विजय कुमार चौधरी

ब्रिटिश संसद के पर्यावरणीय आपातकाल संबंधी प्रस्ताव के प्रभाव पर दुनिया भर की नजर रहनी चाहिए

इस माह पहली मई को ब्रिटेन की संसद ने एक अभूतपूर्व कदम उठाते हुए 'पर्यावरण एवं जलवायु आपातकाल' लागू करने का प्रस्ताव पारित किया। इसके पहले वेल्स एवं स्कॉटलैंड ने भी इसी तरह के आपातकाल की घोषणा की थी। यह अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम था। इसने पूरी दुनिया का ध्यान जलवायु परिवर्तन से होने वाले आसन्न कुप्रभावों की ओर आकृष्ट किया। इसने भारतवासियों का ध्यान अधिक खींचा, क्योंकि ठीक उसी समय फणि तूफान ओडिशा एवं अन्य पूर्वी तटीय इलाकों में तबाही मचा रहा था। जलवायु परिवर्तन पिछले कई दशकों से दुनिया के लिए एक संवेदनशील मुद्दा बना हुआ है। इस पर संयुक्त राष्ट्र के साथ-साथ अन्य संस्थाओं की ओर से सम्मेलन और कार्यक्रम आयोजित होते रहे हैं। इन दिनों ग्रेटा थुनबर्ग नाम की स्वीडन की एक किशोरी चर्चा में है। उसने पर्यावरण सुरक्षा विषय पर संसद के सामने हजारों विद्यार्थियों के साथ प्रदर्शन करके एक मिसाल कायम की। जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसान के प्रति जागरूकता जगाने एवं निदान खोजने हेतु इस प्रदर्शन ने सारी दुनिया का ध्यान खींचा और वह ग्लोबल वार्मिंग के विरुद्ध जन प्रदर्शन की प्रतीक बन गई।

ग्लोबल वार्मिंग का ही नतीजा है जलवायु परिवर्तन। 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के बाद पृथ्वी की सतह और महासागरों के औसत तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। इसका मुख्य कारण कारखानों के अलावा मनुष्य के दैनिक क्रियाकलापों के कारण उत्सर्जित होने वाली ग्रीनहाउस गैसें हैं। भूमंडलीय वातावरण का तापमान एक स्वभाविक संतुलन प्रक्रिया से नियंत्रित होता है। सूरज से आने वाली गर्मी अगर वातावरण में अवशोषित हो जाती है तो पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ जाता है और यदि सूरज से आने वाली गर्मी पृथ्वी की सतह से परावर्तित होकर पुनः वायुमंडल में वापस हो जाती है तो पृथ्वी का तापमान नहीं बढ़ता। यदि तापमान स्थिर करना है तो वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा नियंत्रित रखनी होगी जिससे सौर उर्जा का अधिकतम परावर्तन हो जाए। अंधाधुंध उद्योगीकरण और जीवनशैली के कारण बेहिसाब ग्रीनहाउस गैसों का निर्माण हो रहा है। आज उर्जा के प्रमुख स्रोत के रूप में कोयला, प्राकृतिक तेल एवं गैस का उपयोग हो रहा है। इस कारण कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन वायुमंडल में होता है। दूसरा कारण वनों की कटाई है। वृक्ष वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण करते हैं एवं ऑक्सीजन छोड़ते हैं। वृक्षों की कटाई से यह संतुलन बिगड़ जाता है। आजकल प्रचलित बहुफसली खेती के कारण भी वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ रही है। जानवरों के द्वारा भी मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है। इसके अलावा उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग भी पर्यावरण के लिए ठीक नहीं।

अपशिष्ट निपटान यानी वेस्ट डिस्पोजल भी एक समस्या है। हमारे यहां अपशिष्ट प्रबंधन का तरीका सही न होने और कचरा जमा होने या उसके जलाने से भी धरती की सतह एवं जलस्रोतों में मीथेन एवं अन्य दूसरे विषैली गैसों की मात्रा बढ़ती है। इसी प्रकार खनन संबंधी गतिविधियों से भी ग्रीनहाउस गैसों का निर्माण होता है। धरती के बढ़ते तापमान से पूरी दुनिया के साथ भारत की चिंता भी स्वाभाविक है। एक रपट में बताया गया है कि 19वीं शताब्दी की समाप्ति के बाद से भूमंडल के तापमान में वृद्धि जारी है। यह तापमान अगर 1.5 डिग्री सेंटीग्रेट तक बढ़ता है तो इसके घातक परिणाम होंगे। इससे मौसम चक्र प्रभावित होगा और अनावृष्टि, बाढ़, चक्रवात आदि का खतरा बढ़ जाएगा। अगर तापमान दो डिग्री सेंटीग्रेट तक बढ़ा तो हालात और विनाशकारी होंगे। ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के लिए 197 देशों ने पेरिस समझौता किया था। समझौते के तहत 2100 तक पृथ्वी की सतह का तापमान 1.5 डिग्री सेंटीग्रेट से अधिक नहीं बढ़ने देने का संकल्प लिया गया था। भारत ने इस समझौते के लिए कदम उठाए हैं, लेकिन अन्य विकासशील देशों की तरह भारत के सामने गरीबी हटाने की चुनौती है। इस चुनौती का सामना आर्थिक विकास से ही संभव है जिससे हम समझौता नहीं कर सकते।

पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति के लिए मूल रूप से विकसित देश जिम्मेदार हैं। सबसे अधिक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन उन्हीं के द्वारा किया जा रहा है। केवल अमेरिका और चीन मिलकर 40 प्रतिशत ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं। न्यायसंगत यही होगा कि ग्लोबल वार्मिंग के लिए जो जितने बड़े कारक हैं उन्हें निवारण हेतु उतना ही आगे बढ़कर उदारता से योगदान करना चाहिए। देखना है कि ब्रिटिश संसद का पर्यावरणीय आपातकाल संबंधी प्रस्ताव कितना प्रभावी होता है? जलवायु परिवर्तन को एक आसन्न आपदा के रूप में देखा जाना चाहिए और उससे निपटने के लिए असाधरण कदम भी उठाए जाने चाहिए।

(लेखक बिहार विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

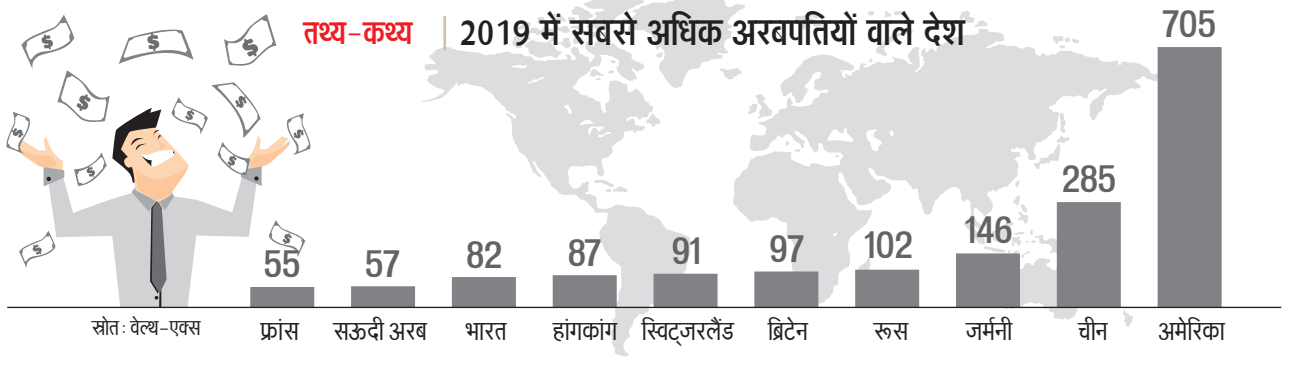

ऊर्जा

धर्म

धर्म मानव-जीवन की आचार-संहिता है जो हमें कर्तव्य-पालन की दिशा और प्रेरणा प्रदान करता है। धर्म वैसा ही है, जैसा आकाश। जैसे घटाकाश, मठाकाश कहने से आकाश अनेक नहीं होता, उसी प्रकार विभिन्न नाम होने से धर्म अनेक नहीं हो सकता। धर्म वह वस्तु है जिसे सभी जन, समाज व मतावलंबी, सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। धर्म को सभी मत-मतांतर सुख की प्राप्ति का निमित्त समझते हैं।

सभी संप्रदाय उपदेश देते हैं कि विश्व की अति सुंदरतम वस्तु को छोड़कर धर्म धारण करो। सभी ज्ञानी, संत, विद्वान, चाहे वे किसी धर्म के मानने वाले हों, यही शिक्षा देते हैं कि धर्म से कुछ और नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि धर्म धारण करने से पुरुष, देवपुरुष बन जाता है। गीता, वेद, उपनिषद आदि युगों से हमें धर्म की शिक्षा दे रहे हैं। धर्म का सिद्धांतों में किसी को दुख न पहुंचाना, क्रोध, लालच न करना, मीठे व हितकर वचन बोलना जैसे तत्व शामिल हैं। ये सामाजिक जीवन को पुष्ट रखने वाले हैं। जिस समय मनुष्य में ये गुण विद्यमान थे, वह सतयुग था। धीरे-धीरे मनुष्य के स्वभाव व व्यवहार में अंतर आता गया त्यों-त्यों युग का ह्रास होता गया। सतयुग के बाद त्रेता और उसके उपरांत द्वापर ने दस्तक दी। फिर कलयुग आया।

वर्तमान में मनुष्य के भीतर उत्तम गुणों का अभाव हो रहा है। इसी कारण यह कलयुग है। धर्म ही श्रेष्ठ है। वह मनुष्य के महत्व और यश को पराकाष्ठा तक पहुंचाता है। धर्म की राह पर चलने वाले को इस जगत में अर्थ और सुख तो प्राप्त होता ही है, साथ ही परलोक में भी अभ्युदय और अभीष्ट की प्राप्ति होती है। परंतु साधक को धर्म के मार्ग पर चलने हेतु प्रारंभ में क्षति अवश्य उठानी होती है। जीवों के प्रभव अर्थात कल्याण हेतु धर्म का विधान किया गया है, अतएव जो वस्तु प्रभव संयुक्त हो, उसी को कल्याण रूपी धर्म समझना चाहिए। चोरी, अन्याय, वध आदि से मनुष्य को क्लेश न हो, इसीलिए धर्म को विधान कहा गया है। जो मनुष्य नित्य सभी का भला चाहता है, मन, वचन, कर्म से सबके हित में लगा रहता हो, वही धर्म को जानता है। धर्मात्मा वही है जिसकी आत्मा निष्पाप और उसका चरित्र स्वच्छ हो। जिसका अंतःकरण मलिन है, उसे जूही का हार भी जलते हुए अंगार की भांति कष्ट देता है। इसीलिए धर्म के मर्म को आत्मसात करना बहुत उपयोगी होता है।

डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी

शिक्षा का बदलना होगा स्वरूप

देवेंद्रराज सुथार

शोध-अनुसंधान को बढ़ावा देकर हमें कौशल विकास से जुड़ी शिक्षा प्रणाली अपनानी होगी जो रोजगार दिला सके

आधुनिक शिक्षा प्रणाली केवल और केवल नंबरों की बुनियाद पर टिकी है। सर्वाधिक अंक अर्जित करने वाले छात्र का ही यशगान होता है। मीडिया में भी उनका भरपूर महिमामंडन किया जाता है। छात्रों को इस नंबरों की दौड़ में अव्वल आने के लिए अभिभावक प्रलोभन देते हैं व अनुचित दबाव डालते हैं। कई बार अभिभावकों की अपेक्षा के अनुसार अंक न आने पर छात्र हताशा के गर्त में चले जाते हैं। हीनता व निराशा का बालमन पर इतना गहरा आघात पहुंचता है कि वे नादानी में अपनी जिंदगी ही नष्ट कर देते हैं। नंबरों की इस होड़ में बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा दब रही है। उनकी मौलिक सोच एवं रचनात्मकता का ह्रास हो रहा है। मौजूदा शिक्षा शिक्षित बेरोजगारों की संख्या ही बढ़ा रही है। 19वीं सदी में मैकाले ने भारत को जो शिक्षा प्रणाली प्रदान की वह सिर्फ बाबू बनाने वाली साबित हो रही है।

आज हमारे देश का तथाकथित शिक्षित वर्ग अपने वेदों, पुराणों व प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को अवैज्ञानिक, असत्य, काल्पनिक, रूढ़िवादी व अंधविश्वासी मानता है और पश्चिम द्वारा कही गई हर बात को सही व वैज्ञानिक मानता है। आज का शिक्षित वर्ग राम को रामा, अर्जुन को अर्जुना व योग को योगा कहकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है। आज जहां विकसित देश शोध एवं विकास पर सर्वाधिक ध्यान दे रहे हैं। वहीं भारत में इसके विपरीत देखने को मिल रहा है। भारत में शोध-अध्ययन की गुणवत्ता महज डिग्री हासिल करने तक ही सीमित है।

शोध से जुड़े आंकड़े बताते हैं कि ब्रिक्स देशों में केवल भारत ही ऐसा देश है, जहां शोध पर कुल जीडीपी का मात्र 0.9 फीसद खर्च किया जाता है। दूसरी ओर चीन में यह 1.9 फीसद, रूस में 1.5 फीसद, ब्राजील में 1.3 फीसद तथा दक्षिण अफ्रीका में एक फीसद खर्च होता है। इसी वजह से राष्ट्रीय उच्च शिक्षा मूल्यांकन परिषद ने भी अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया है कि भारत में 68 फीसद विश्वविद्यालयों और 90 फीसद कॉलेजों में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता या तो मध्यम दर्जे की है या दोषपूर्ण है। इन संस्थानों के 74 फीसद डिग्रीधारी छात्र बेरोजगार हैं। बीते दिनों एक रिपोर्ट में खुलासा हुआ कि देश में 60 फीसद विश्वविद्यालयों और 80 फीसद कॉलेजों से निकले छात्रों के पास न तो तकनीकी कौशल है और न ही भाषा की दक्षता है। यही कारण है कि ऐसे छात्र उचित रोजगार नहीं पा सकते।

हमने यह समझने में बहुत देरी कर दी कि अकादमिक शिक्षा की तरह अपनी नई पीढ़ी को बाजार की मांग के मुताबिक उच्च गुणवत्ता वाली कौशल विकास से जुड़ी शिक्षा देना भी हमारे लिए जरूरी है। एशिया की आर्थिक महाशक्ति दक्षिण कोरिया ने विकास के मामले में चमत्कार कर दिया है। वर्ष 1950 तक विकास के स्तर और विकास दर, दोनों ही मामलों में दक्षिण कोरिया हमारे मुकाबले कहीं नहीं था, लेकिन आज उसकी गिनती भारत से एक पायदान आगे वाले देशों में होती है और विकास के कुछ पैमाने पर वह जर्मनी जैसे देश को भी पीछे छोड़ चुका है तो इसमें बड़ी भूमिका कौशल से जुड़ी शिक्षा की है। निश्चित रूप से कौशल विकास को बढ़ावा दिए बिना देश विकसित व आत्मनिर्भर नहीं हो सकता।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

सियासी सुविधा का सवाल

राजीव गौड़ा और सलमान सोज- इन दो कांग्रेस नेताओं का लेख 'अर्थव्यवस्था की बिगड़ती तस्वीर' किसी चुनावी सभा का भाषण प्रतीत होता है। इसमें तथ्यों के साथ मनमाना खिलवाड़ किया गया है। बतौर उदाहरण जरा देखिए, लेखकों के अनुसार तिमाही के सकल घरेलू उत्पाद में कमी के कारण 1.6 लाख करोड़ रुपये के राजस्व की कमी हुई, जो वास्तविक राजकोषीय घाटे को बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत कर देगी, किंतु पिछले पूरे साल के घाटे के आंकड़े तो 3.2 प्रतिशत पर ही विद्यमान हैं। यही नहीं इस वित्तीय वर्ष के प्रथम दो महीनों में जीएसटी का संग्रह रिकॉर्ड तोड़ 2.20 लाख करोड़ पहुंचा है, जो गत वर्ष के औसत से लगभग 30 हजार करोड़ रुपये अधिक है। वास्तव में कांग्रेस अपने खुद के उत्पादित आंकड़ों के प्रयोग में निपुण है, यदि अधिकृत आंकड़े उसके अनुकूल न हों। लेखक कहते हैं कि रोजगार के बारे में प्रधानमंत्री व वित्त मंत्री ने बोलना ही छोड़ दिया है। आप लोगों ने उन्हें ध्यान से सुनना ही छोड़ दिया है, वर्ना जब उन्होंने बताया कि साढ़े चार करोड़ नवीन मुद्रा लोन जो दिए गए, उनसे न्यूनतम 4.5 करोड़ रोजगार तो सृजित हुए ही होंगे, जबकि संभावना इस बात की अधिक है कि प्रत्येक लोन-प्राप्तकर्ता ने कम से कम एक बेरोजगार को काम अवश्य दिया होगा। अगर आधों ने भी ऐसा किया है तो नवीन मुद्रा लोन ने लगभग सात करोड़ भारतीयों को रोजगार दिया। जिन छह करोड़ पुराने उद्यमियों ने अपने कार्य विस्तार के लिए मुद्रा लोन लिए, उन्होंने भी कम से कम तीन करोड़ लोगों को काम दिया ही होगा। सरकारी स्तर पर अनेक बार ये तथ्य दिए जाने, मोदी-जेटली एवं अन्य मंत्रियों द्वारा दोहराए जाने के बावजूद यदि गौड़ा-सोज को लगता है कि सरकार रोजगार के मोर्चे पर फेल है, तो उन्हें सड़कों-गलियों में अनुपलब्ध बेरोजगारों की फौज अपना दृष्टिकोण बदलने को शायद मजबूर कर सके।

अजय मित्तल, मेरठ

कायम रहे लोकतंत्र की गरिमा

चुनाव के बाद यदि राजग को बहुमत नहीं मिला तो विपक्ष एकजुट होकर नरेंद्र मोदी को सत्ता में आने से रोक सकता है। यदि चुनाव से पहले महागठबंधन की अवधारणा को मूर्त रूप दिया जाता तो चुनाव में बराबर की टक्कर हो सकती थी, लेकिन स्वहितों के टकराव के कारण महागठबंधन का सपना साकार नहीं हुआ। किसी भी दल या गठबंधन की सफलता के लिए एक सर्वमान्य सक्षम नेतृत्व का होना अनिवार्य है। लेकिन विपक्ष के पास आज भी कोई ऐसा मजबूत धागा नहीं है जो विपक्ष के बिखरे मनकों को एक माला में पिरो सके। वर्ष 2014 के आम चुनाव में भाजपा को नरेंद्र मोदी के रूप में एक सक्षम नेतृत्व मिला और वह दस साल बाद अपने बलबूते सत्ता के सिंहासन पर जा बैठी। इसलिए सबसे अहम प्रश्न यही है कि यदि विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर मिला तो प्रधानमंत्री का सेहरा किसके सिर बंधेगा? यह प्रश्न फिलहाल भविष्य के गर्भ में है जिसका पता 23 मई को चलेगा। भले ही कोई हारे कोई जीते, राष्ट्र के लोकतंत्र की गरिमा बनी रहनी चाहिए।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

गलतियां करने की लगी है होड़

राजनीति में आदर्शों की बात बेमानी हो गई है। सभी दल एक- दूसरे को नीचा दिखाने पर तुले हुए हैं। आरोपों का जवाब प्रत्यारोपों से दिया जा रहा है। कहीं व्यक्ति विशेष का महिमामंडन है, तो कहीं मानहानि का अनुचित प्रयास। एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने में लगे हुए दल, खुद के गिरेबां में झांकने की हिम्मत नहीं करते। एक के गलत कार्य (या बयान) को दूसरे के गलत कार्य (या बयान) बताकर सही ठहराया जा रहा है। गलतियों के अनुसरण में सब आगे हैं और उनके लिए माफी मांगना किसी गुनाह से कम नहीं है।

sonimohit89@gmail.com

सफाई कर्मियों की भी ला जाए सुध

नालों व सीवर लाइनों की सफाई करते वक्त सफाई कर्मियों का मारा जाना दुखद है। आज तकनीकी के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक आधुनिक उपकरण बनाए जा रहे हैं, ताकि इंसानों को परंपरागत तरीकों से कार्य करने से बचाया जा सके। क्या नालों व सीवरों की सफाई के लिए ऐसे उपकरण तैयार नहीं किए जा सकते, जिससे सफाई कर्मियों को मौत के मुंह में जाने से बचाया जा सके। सफाई कर्मी भी किसी भी परिवार का हिस्सा हैं। उनकी मृत्यु का दर

39 प्रतिशत वोट तृणमूल कांग्रेस को मिले थे वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में पश्चिम बंगाल में, जबकि भारतीय जनता पार्टी को करीब 17 फीसद और कांग्रेस को 9.5 प्रतिशत वोट मिले थे।

आजकल

शाहिद ए चौधरी
वरिष्ठ पत्रकार

दिल्ली के लिए पश्चिम बंगाल में संग्राम

रविवार को पश्चिम बंगाल समेत देश के अन्य राज्यों में 17वीं लोकसभा के लिए आखिरी चरण का मतदान होगा। हालांकि देश के अन्य राज्यों में लोकसभा सीटों के लिए चुनाव प्रचार नियमानुसार शुक्रवार की शाम समाप्त हुआ, लेकिन पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ताओं के बीच झड़प होने के कारण प्रचार को एक दिन पहले ही यानी गुरुवार की शाम को ही रोक दिया गया था। पश्चिम बंगाल का चुनाव इस मायने में भी इस बार थोड़ा अलग कहा जा सकता है, क्योंकि यहां पर चुनाव प्रचार के दौरान न केवल अमर्यादित भाषा का इस्तेमाल किया गया, बल्कि हिंसा भी फैलाई गई। चूंकि दोनों दलों ने अपनी ओर से पूरी जोर आजमाइश की है और शायद इसीलिए यह माना जा रहा है केंद्र की सत्ता में बंगाल की अहम भूमिका हो सकती है

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी और देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के बीच कल तक जिस तरीके से स्तरहीन वाकयुद्ध चुनाव प्रचार के दौरान देखने को मिला है, वह दर्शाता है कि तृणमूल कांग्रेस और भाजपा के बीच राज्य में कांटे की टक्कर है। यहां मोदी अभियान अन्य राज्यों की तुलना में भिन्न है, खासकर इसलिए कि तृणमूल कांग्रेस के आठ वर्षों के शासनकाल ने प्रधानमंत्री को बोलने के लिए काफी मसाला दिया है, लेकिन यही अवसर केंद्र में मोदी के पांच साल के शासन ने ममता बनर्ती को भी दे दिया है। स्तरहीन जुमलेबाजी का यह मुख्य कारण यही है। जहां मोदी का फोकस हिंदुत्व और स्पीड ब्रेकर दीदी पर है, वहीं ममता का फोकस 'एक दुई तीन, बीजेपी के बिदाई दिन' पर है। दोनों ही तरफ से विकास, योजनाओं, जनता की समस्याओं आदि का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

पश्चिम बंगाल के अनेक हिस्सों में चिलचिलाती गर्मी में ममता बनर्जी अपने प्रयासों से तापमान में और इजाफा कर रही हैं, जबकि भाजपा ने आखिरी चरण के मतदान के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक दी है। ममता घिरी हुई बाघिन का एहसास करा रही हैं कि अपने क्षेत्र का एक इंच भी देने के लिए तैयार नहीं हैं। स्टेज पर वह मोदी और भाजपा के विरुद्ध दहाड़ते हुए कहती हैं, 'वह सोचते हैं कि हिंदुओं व मुस्लिमों को आपस में लड़ाकर वह बंगाल जीत लेंगे। उन्हें वोट चाहिए, लेकिन हम उन्हें स्टोन चिप्स से भरा रसगुल्ला देंगे।' दिलचस्प बात यह है कि वामपंथियों, जिनका बंगाल कभी गढ़ था, उनका कोई जिक्र ममता अपने भाषणों में नहीं कर रही हैं। यह बंगाल की राजनीति में नाटकीय परिवर्तन है। वामपंथ लगभग लुप्त हो गया है। कमजोर हो चुकी कांग्रेस पहचान के लिए संघर्ष कर रही है, इसलिए भाजपा ही बंगाल में मुख्य विपक्ष है। पश्चिम बंगाल के 30 प्रतिशत मुस्लिम भाजपा के राडार में नहीं हैं, इसलिए दोनों तृणमूल व भाजपा बंगाली हिंदू मतों के लिए हताशा भरा संघर्ष कर रही हैं।

हिंदुत्व पर बल देते हुए मोदी-शाह जय श्री राम के नारे लगाते हुए ममता पर 'मुस्लिम तुष्टीकरण' का आरोप लगा चुके हैं। दूसरी ओर तृणमूल के जवाबी नारे जय बांग्ला और जय मां काली है। भाजपा हिंदुत्व राष्ट्रवाद का कार्ड खेल रही है और ममता बंगाली गर्व का कार्ड खेल रही हैं। ममता अपने भाषणों का अंत हिंदू श्लोकों से कर रही हैं। उनके समर्थक शंख भी बजाते हैं। मां काली पर जो अत्याधिक बल है, उससे कहीं मुस्लिम विचलित न हो जाएं इसलिए अपनी धर्मनिरपेक्षता को जाहिर करने के लिए ममता अपने भाषण के बीच में 'अल्लाहू अकबर' कहना नहीं भूलती हैं, लेकिन उनका फोकस बांग्ला गर्व पर ही रहता है।

> लोकसभा चुनाव में भले ही तृणमूल बढ़त बना ले, लेकिन आगामी विधानसभा चुनाव में उसकी राह मुश्किल दिख रही है

वामपंथ को परास्त करने के लिए तृणमूल ने बंगाल की राजनीति में धर्म को जगह देने का प्रयास किया। इस तरह उसने अप्रत्यक्ष रूप से भाजपा के हिंदुत्व के लिए उपजाऊ जमीन प्रदान कर दी। इसलिए अब दुर्गा पूजा भी राजनीतिक युद्धों का मैदान बन गई है, जबकि पहले वह जश्न, खुशी व सांस्कृतिक मेल-मिलाप का अवसर हुआ करती थी। बहरहाल बंगाल मधुसुदन दत्त व सुकुमार रे की भूमि है, इसलिए शायद यहां उत्तर भारत के आक्रामक हिंदुत्व को स्थान न मिले, पर कांग्रेस व वामपंथ के कमजोर होने पर जो लोग ममता का विकल्प तलाश रहे हैं वे भाजपा की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

इस पृष्ठभूमि में यह प्रश्न प्रासंगिक है कि क्या इस बार भाजपा तृणमूल के गढ़ को भेद पाएगी? बंगाल में नए जाति समीकरण बन रहे हैं। भाजपा का नागरिकता विधेयक पर बल, उत्तर पूर्व के जबरदस्त विरोध के बावजूद, इसलिए था कि वह पूर्वी पाकिस्तान से आए बंगालियों को, जो नागरिकता अधिकारों के लिए अब भी संघर्ष कर रहे हैं, अपने पाले में लाना चाहती थी।

गौरतलब है कि वर्ष 2014 में भाजपा को 17 प्रतिशत वोट हिस्से के साथ 87 लाख मत मिले थे, जबकि तृणमूल कांग्रेस को 39.8 प्रतिशत वोट शेयर के साथ 2.03 करोड़ मत मिले थे। यह बड़ा फासला उसी सूरत में कवर हो सकता है जब वाम मोर्चा और कांग्रेस पूरी तरह से एक प्रतिशत से नीचे आ जाएं, जो फिलहाल संभव नहीं दिख रहा है। फिर इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि पश्चिम बंगाल में तृणमूल ने चुनावी रणनीति में वैसी ही महारत हासिल की हुई है जैसी भाजपा की गुजरात में है। यह सही है कि ममता को पराजित करने की इच्छा से कुछ वामपंथी विचारधारा को एक किनारे रखते हुए बीजेपी के पक्ष में टैक्टिकल वोटिंग कर सकते हैं, लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि बड़ी संख्या में वामपंथी भाजपा के हिंदुत्व की तुलना में तृणमूल के बांग्ला गर्व को प्राथमिकता देना पसंद करेंगे।

बहरहाल अनुमान यह है कि वाम मोर्चा अपना 15 से 20 प्रतिशत वोट शेयर तो बरकरार रख लेगा, लेकिन उसके लिए एक भी सीट जीतना कठिन होगा। पश्चिम बंगाल की 42 लोकसभा सीटों में से कम से कम 25 पर तृणमूल और भाजपा के बीच सीधा मुकाबला है, लेकिन बहुत अधिक अंतर के साथ। भाजपा इस बार तो इस फासले को शायद कम न कर सके यानी तृणमूल कांग्रेस अपना गढ़ बचा सकती है, लेकिन भविष्य ममता के लिए अच्छा दिखाई नहीं दे रहा है। अगर भाजपा मजबूत स्थानीय नेतृत्व विकसित करने में सफल हो जाती है तो वह वर्ष 2021 के विधानसभा चुनाव में तृणमूल कांग्रेस को अधिक अच्छी टक्कर दे सकती है।

चुनाव में हार और जीत तो लोकतंत्र का हिस्सा है, लेकिन जिस घटिया स्तर की प्रचार राजनीति (जिसमें वास्तविक मुद्दे पूर्णतया नदारद रहे) हुई है, वह पश्चिम बंगाल की सामाजिक व्यवस्था के लिए बहुत चिंताजनक है। पश्चिम बंगाल में वामपंथ के लगभग तीन दशक के शासन ने सांप्रदायिक तत्वों को हाशिये पर डाल दिया था, अब नरेंद्र मोदी और ममता बनर्जी चुनाव जीतने के लिए जो प्रयास कर रहे हैं उससे यह तत्व फिर से मुख्यधारा में आ सकते हैं, जो न तो पश्चिम बंगाल के लिए अच्छा है, और न ही देश के लिए।

- इमेज रिफ्लेक्शन सेंटर

किसकी होगी सत्ता, कहना मुश्किल

अरविंद जैन

चुनाव आखिरी पड़ाव की तरफ बढ़ चला है। सब जगह चर्चा का एक ही विषय है कि कौन बनेगा प्रधानमंत्री? मोदी, ममता, माया या कोई और? बहुमत नहीं मिलने पर मोदी तो सरकार बना सकते हैं, पर कांग्रेस शायद नहीं बनाएगी। आजादी के बाद से केंद्र में अधिकतम समय कांग्रेस की सरकार रही है। अकेले नेहरू-गांधी परिवार के तीन सदस्य ही 37 साल 303 दिन सत्ता में रहे। नरेंद्र मोदी के पहले सिर्फ अटल बिहारी वाजपेयी ही ऐसे गैर-कांग्रेसी थे जो पूरे पांच साल प्रधानमंत्री रह पाए थे। बाकी गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री, आधा कार्यकाल भी पूरा नहीं कर पाए।

आगामी 23 मई के बाद भी अगर किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला, तो सरकार भाजपा या कांग्रेस की बैसाखियों पर ही बनेगी। प्रधानमंत्री बनने की दौड़ में बहुत सी महत्वाकांक्षाएं उछल-कूद मचा रही हैं। वर्ष 1967 के बाद से वर्ष 2018 तक जिन-जिन राज्यों में राष्ट्रीय दलों के अलावा तीसरा विकल्प यानी स्थानीय राजनीतिक दल उपलब्ध था, जनता उसे ही सत्ता सौंपना बेहतर समझती रही है। परिधि से केंद्र की दूरी बढ़ती रही। वास्तव में केंद्र के नेताओं के पास, स्थानीय समस्याओं, सवालों के जवाब देने की समझ ही नहीं रही और कोई भी उन राज्यों की आम जनता का विश्वासपात्र नहीं बन पाया। तथाकथित राष्ट्रीय दल कमजोर होते गए और राज्य स्तर के दलों की बैसाखियों के सहारे चलना पड़ा। राज्य में ऊपर से थोपा लीडर अधिक दिन टिक नहीं सकता।

ऐतिहासिक तथ्य-सत्य यह है कि क्षेत्रीय दलों ने जब-जब केंद्र से हाथ मिलाया, अगले चुनाव में जनता ने उसे घर बैठा दिया। वर्ष 2014 के आम चुनाव, उत्तर प्रदेश में 2017 के विधानसभा चुनाव और उसके बाद कई अन्य राज्यों में चुनावों में आए परिणामों को देखते हुए यह लगा था कि अवाम अब क्षेत्रीय दलों की राजनीति की बजाए राष्ट्रीय दलों की तरफ बढ़ रही है। दलित-पिछड़े लोग अपनी सुरक्षा और सुविधा पाने के लिए सत्ताधारी वर्ग की शरण में जा रहे हैं। देश की राजनीति बदल रही है। सिर्फ कांग्रेस व भाजपा की जीत राष्ट्रीय राजनीति की ओर मुड़ रही है। छोटे दलों का अस्तित्व धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है।

फरवरी 2018 के लोकसभा उप-चुनाव से पहले सपा-बसपा का गठबंधन और बीती मई में कर्नाटक चुनाव के बाद कांग्रेस और जेडीएस का मधुर मिलन, बता रहा है कि क्षेत्रीय दल अपना अस्तित्व बचाने के लिए राजनीतिक मतभेद भूलकर दशकों बाद भी आपस में मिलकर समझौते कर रहे हैं, कर सकते हैं। लालू-नीतीश ने भी यह रस्म निभाई थी। खैर उप-चुनावों में उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा की जीत और कर्नाटक के परिणाम यह भी बता रहे हैं कि क्षेत्रीय दलों का आधार समाप्त नहीं हुआ। बिहार में भी एक लोकसभा उप-चुनाव लालू यादव की झोली में गया है। पंजाब और राजस्थान के उप-चुनावों में भी 'कमल' नहीं खिल पाया था।

दिसंबर 2018 में हुए विधानसभा चुनावों में मध्य प्रदेश में भाजपा को 41 प्रतिशत और कांग्रेस को 40.9 प्रतिशत वोट मिले, पर भाजपा को पांच सीट कम मिली। राजस्थान में भाजपा को 38.8 प्रतिशत और कांग्रेस को 39.3 प्रतिशत वोट मिले, लेकिन सीट 27-28 अधिक। छत्तीसगढ़ में वोट में काफी ज्यादा अंतर है, सो सीट भी अधिक हैं। जरूरी नहीं कि वोट अधिक या कम होने से सीट भी अधिक या कम हो। बहुमत के लिए एक अधिक वोट ही काफी है। यही गणित है। यही खेल है आंकड़ों का। प्रजातंत्र में सत्ता का खेल। बहुमत का खेल।

चुनाव 2019 से पहले ही कई नेता इस्तीफा देकर इधर-उधर गए। मित्र से शत्रु बन गए हैं और शत्रु से मित्र! चिंतन शिविर में कोई किसी की नहीं सुन रहा। हर जगह गहरा 'दल-दल' है और यह राजनीति के अपने ही बोये 'बीज' हैं। वर्ष 2017-18 में हुए चुनावों के आधार पर ही आगे की चुनावी राजनीति रणनीति तय हुई है। जनता मौन है, उसका अंतिम फैसला क्या होगा कहना कठिन है, मगर एक बात साफ है कि स्पष्ट बहुमत न होने से सियासत के संकट बढ़ेंगे। कई राज्यों में सत्ताधारी दल को नुकसान की आशंका है। दक्षिण भारत और अन्य राज्यों में जनाधार बढ़ने की संभावना न्यूनतम हैं। निस्संदेह विपक्षी दल 2014 से बेहतर स्थिति में हैं और इस बार कुछ अधिक सीटों की उम्मीद में हैं। फिलहाल यह कहना मुश्किल है कि किसके बूते बनेगी सरकार।

- इमेज रिफ्लेक्शन सेंटर

खरी-खरी

विक्रम-बेताल की नगर परिक्रमा

डॉ. पिलकेंद्र अरोरा

राजा विक्रमार्थ ने हठ न छोड़ा। श्मशान के पेड़ पर लटके हुए बेताल के शव को उतारा, कंधे पर टांगा और नगर परिक्रमा पर निकल कर बोले- बेताल, आज तुम कोई पुरानी कहानी सुनाकर मुझे बोर मत करना! ये चुनाव का मौसम है, आंखों देखा हाल सुनाना।

अवश्य राजन! परंतु पहले आप अपने स्वर्ण आभूषण किसी गुप्त स्थान पर छुपा दीजिए। आजकल बहुत सख्ती है! कहीं आपकी चेकिंग न हो जाए!

ओह! थैंक्यू बेताल। वैसे भी राज्य में बहुत कड़की है!

सुनो राजन! यहां किसी भी एंगल से लगता नहीं कि चुनाव का मौसम है! न कट आउट, न बैनर, न पोस्टर, न पंपलेट, न झंडे, न डंडे, न ढोल, न ढमाका, न नारे, न बिल्ले, न मंच, न माला, न माइक! न हुड़दंग, न पुलिस! ये कैसा चुनाव है? इससे ज्यादा शोर-शराबा तो हमारे जमाने में कॉलेज यूनियन के चुनाव में होता था! इधर देखो, एक नेता जी पद-यात्रा करते हुए जनसंपर्क पर हैं! गले में कितनी सारी मालाएं हैं। डर है कहीं उन्हें सर्वाइकल की प्रॉब्लम न हो जाए! और वे झुक भी कितना रहे हैं! लगता है मानो उनकी रीढ़ ही नहीं है! वे रोड पर शो कर रहे हैं, जबकि भीड़ ही नहीं है। इस जनसंपर्क रैली में कार्यकर्ताओं का काई अता-पता नहीं है। लगता है सारे कार्यकर्ता, नेता बन गए हैं! आखिर कब तक वे गुर्गे बनकर झंडे ही उठाते रहेंगे!

उधर देखो, कुछ लोग दौड़ रहे हैं।

क्षमा करें महाराज! ये तो लोगों से अधिक से अधिक मतदान की अपील कर रहे हैं। उनके हाथों में तख्तियां और फ्लैक्स हैं। पर दुर्भाग्य यह है कि दान में मिली चीज का महत्व कौन समझता है! इसीलिए चुनाव के पहले वोटर 'मत-वाले' होते हैं और बाद में अधिकतर नेता 'मतवाले'! चुनाव पूर्व 'हम साथ-साथ हैं' और बाद में 'हम आपके हैं कौन?'

राजन, चुनाव में इतनी शांति मैंने मरने के बाद पहली बार देखी! सच कहूं, मैंने जिंदगी में कभी कंबल नहीं खरीदा और न ही अपनी पत्नी के लिए साड़ी! चुनाव के दिनों में मुझे देसी-विदेशी ब्रांड की 'दवाई' इतनी मिलती थी कि साल भर का स्टाक हो जाता था! मुफ्त की पीकर मैं और लोकतंत्र, दोनों ही बीमार हो गए, पर मैं लेता रहा और एक दिन बेताल बन गया! मैं मरा नहीं था, राजन! शहीद हुआ था! लोकतंत्र की रक्षा के लिए! चलो अब मुझे वापस श्मशान छोड़ आओ! वरना मैं तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा!

ट्वीट-ट्वीट

गांधी होने में 'एक उम्र' लगती है, गोडसे तो 'एक पल' में हुआ जा सकता है!
कुमार विश्वास@DrKumarVishwas

साध्वी प्रज्ञा को मन से माफ न करने का प्रधानमंत्री मोदी का बयान बहुत सराहनीय है। देश के प्रधानमंत्री से हमेशा ऐसी ही अपेक्षा की जाती है कि वह साफ दिशा दिखाएं कि गलत गलत ही होता है और सही, सही। अब बेहतर है कि भाजपा को अपनी भयंकर गलती को सुधारते हुए प्रज्ञा को पार्टी से भी बाहर कर देना चाहिए।
विनोद कापड़ी@vinodkapri

भारत पिछले 75 वर्षों से महात्मा की पुण्य भूमि रहा है। जब दुनिया भर में नैतिकता का ह्रास हुआ तो इसी मशाल ने रोशनी दिखाई। हम भले ही गरीब रहे हों, लेकिन इस मोर्चे पर हमेशा अमीर रहे कि बापू ने दुनिया में अरबों लोगों को प्रभावित किया। कुछ चीजें पवित्रता के दायरे में रहनी चाहिए, वरना हम तालिबान बनकर उन्हीं प्रतीकों का विध्वंस करने लगेंगे जिन्होंने हमें एकजुट बनाए रखा।
आनंद महिंद्रा@anandmahindra

जागरण जनमत

कल का परिणाम

पश्चिम बंगाल में चुनावी हिंसा को देखते हुए चुनाव आयोग की कार्रवाई उचित है?

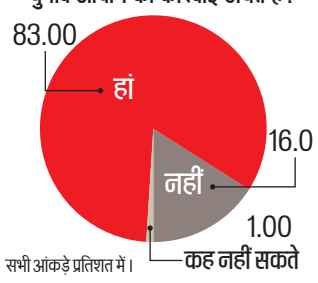

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल

हुआवे पर अमेरिकी सख्ती से क्या अमेरिका व चीन के बीच ट्रेड वॉर की तल्खी और बढ़ेगी?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, **N**-नहीं, **C**-कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

सावरकर से चिढ़ उन्हें राणा जी से बैर,
उनके शासनकाल में राम मनाएं खैर।
राम मनाएं खैर अगर हो वश में इनके,
तो असली इतिहास उड़ेगा तिनके-तिनके।
जिनकी खातिर तीर्थ रहा एडवीना का घर,
जाने उनका वंश भला कैसे सावरकर!
- ओमप्रकाश तिवारी

मो. रियाज मलिक
स्वतंत्र टिप्पणीकार

सवाल थोड़ा मुश्किल, मगर हकीकत है

धरती पर स्वर्ग कहे जाने वाले जम्मू कश्मीर में चुनावी गहमागहमी पूरी तरह से थम गई है। भौगोलिक और राजनीतिक रूप से देश के अन्य हिस्सों से भले ही यह राज्य अलग है, लेकिन चुनाव के समय यहां भी बिजली, पानी, सड़क, स्कूल, अस्पताल, रोजगार और बुनियादी आवश्यकताएं मुख्य चुनावी मुद्दे रहे हैं जिसे ध्यान में रख कर जनता ने अपने मताधिकार का उपयोग किया है। रोजाना टीवी और अखबारों की सुर्खियों में रहने वाले जम्मू कश्मीर को प्रकृति ने अपनी विशेष नेमतों से नवाजा है। प्राकृतिक रूप से यहां पानी के स्रोत जैसे नदी, नाले, ग्लेशियर झरने, बर्फ से ढंके पहाड़ और हरियाली एक अलग ही छटा बिखेरती है, जिसे देखने के लिए साल भर दुनिया के कोने कोने से पर्यटकों का तांता लगा रहता है। इसीलिए इसे एशिया का स्विट्जरलैंड भी कहा जाता है। लेकिन दूसरी ओर धरती का यही सुंदर इलाका कई तरह की सरकारी उपेक्षाओं और सामाजिक पिछड़ेपन का शिकार है।

यहां के निवासी आज भी परेशानियों और मुसीबतों भरी जिंदगी जीने को मजबूर हैं। लोगों को विकास की लौ जलने का अब भी इंतजार है। राज्य में ऐसे कई क्षेत्र हैं जो सामाजिक और आर्थिक रूप से ही नहीं, बल्कि बुनियादी रूप से भी अत्यंत पिछड़े हैं। सीमावर्ती क्षेत्र पुंछ के मंडी तहसील अंतर्गत नागानाड़ी गांव इन्हीं पिछड़े क्षेत्रों में से एक है, जहां पहुंचने के लिए सड़क की सुविधा भी नहीं है। आलम यह है कि इस गांव तक पहुंचने के लिए पहाड़ों के घुमावदार और उबड़-खाबड़ रास्तों और कलियां नदी के किनारे घने जंगलों से होकर पांच से आठ घंटे पैदल चलना पड़ता है। पहाड़ी रास्ते इतने संकीर्ण हैं कि जरा सी असावधानी से इंसान हजारों फीट नीचे खाई में गिर कर मौत के मुंह में समा सकता है। दूसरी ओर ये जंगल इतने सघन हैं कि कोई महिला तो छोड़िए पुरुषों का भी अकेले गुजरना खतरे से खाली नहीं होता है। कहा जाता है कि इस जंगल से गुजरने के लिए एक साथी और हाथ में लाठी आवश्यक है।

नागानाड़ी में मुश्किलें केवल सड़कों की कमी का नहीं है, बल्कि सामाजिक जीवन भी यहां कठिनाइयों से भरा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह गांव काफी पिछड़ा हुआ है। स्थानीय निवासी हाफिज बशीर अहमद के अनुसार धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में नागानाड़ी अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा काफी आगे है, लेकिन आधुनिक और वैज्ञानिक शिक्षा यहां नाममात्र की है। गांव में रहने वाला कोई भी बच्चा पांचवीं कक्षा तक भी नहीं पहुंच सका है। गांव में एक प्राथमिक विद्यालय तो है परंतु नाममात्र के लिए। स्कूल की दुर्दशा का आलम यह है कि स्थानीय निवासी इसके भवन का निजी प्रयोग के लिए इस्तेमाल करते हैं। एक स्थानीय निवासी के अनुसार इस स्कूल में दो शिक्षकों की नियुक्ति हुई है, जिनमें एक शिक्षक यहां कभी आए ही नहीं, जबकि दूसरे शिक्षक महीने में किसी एक दिन आकर अपनी पूरी हाजिरी बना लेते हैं। स्कूल में न तो किसी ने कभी पढ़ाई होते देखी है और न ही मीड डे मिल कार्यक्रम के तहत कभी भोजन बनते देखा है। बच्चों को मिलने वाली पोशाक और अन्य सुविधाओं के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं है। शिक्षा विभाग के किसी अधिकारी ने भी आज तक इस स्कूल का हाल जानने का प्रयास नहीं किया है।

कमी केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं है, बल्कि बिजली, पीने का साफ पानी और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी आवश्यकताएं भी इस गांव के लोगों को मयस्सर नहीं है। मनरेगा जैसी अनेक लाभकारी योजनाओं के बारे में स्थानीय निवासियों को कोई जानकारी उपलब्ध नहीं कराई गई है। बुनियादी आवश्यकताओं की कमी ने नागानाड़ी गांव को विकास की दौड़ में बहुत पीछे धकेल दिया है। ऐसे में किसी को भी अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं होगा कि यहां के निवासी किस तरह कठिन परिस्थितियों में जीवन बसर करने पर मजबूर हैं। वहीं शिक्षा की कमी से नई पीढ़ी का भविष्य कितना अंधकारमय है, इसकी गंभीरता का अंदाजा लगाना भी मुश्किल है। क्षेत्र के निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों को भी शायद नागानाड़ी गांव के लोगों की मुसीबतों से कोई वास्ता नजर नहीं आता है।

देश को आजाद हुए 72 साल से अधिक का वक्त हो चुका है। विकास की दौड़ में हम आसमान छूने की ओर बढ़ रहे हैं। मेक इन इंडिया और डिजिटल इंडिया जैसी योजनाओं ने भारत को विश्व गुरु बना दिया है। किशोर वैज्ञानिक प्रोत्साहन योजना और खेलो इंडिया जैसी अनेक योजनाएं युवाओं के कौशल को आगे बढ़ाने में कारगर सिद्ध हो रहे हैं। वहीं दूसरी ओर नागानाड़ी जैसे देश के दूरदराज क्षेत्रों में जमीनी हकीकत कुछ और ही बयां कर रहे हैं।

सवाल यह है कि देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले इन बच्चों के भविष्य का जिम्मेदार कौन है? सरकारी योजनाएं इनके किस काम की हैं, जबकि इन्हें बुनियादी सुविधाएं भी मयस्सर नहीं हैं? ऐसे में बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना कैसे कामयाब होगी, जब गांव की बेटी को प्राथमिक विद्यालय की सुविधा तक नहीं है? इनकी कठिनाइयों का सिलसिला आखिर कब तक थमेगा? सवाल थोड़ा मुश्किल मगर हकीकत है।

- चरखा फीचर्स

बुद्ध पूर्णिमा

विकेश कुमार बडोला
स्वतंत्र टिप्पणीकार
vikesh34@gmail.com

बुद्धत्व ही है जीवन का मूल

बुद्ध ने कभी भी हिंदू धर्म या उससे संबंधित विचारों, पद्धतियों और दूसरे सामाजिक- आध्यात्मिक प्रतीकों का विरोध नहीं किया। वह हिंदू धर्म की ही एक आध्यात्मिक शाखा की पड़ताल करते रहे

आज बुद्ध पूर्णिमा है। इसी दिन महात्मा बुद्ध का जन्म लुंबिनी में हुआ था, जबकि उनका लालन-पालन कपिलवस्तु में हुआ। ये दोनों ही क्षेत्र आज की भू-स्थिति में नेपाल में हैं। बुद्धकाल में रचित बुद्ध वंश की परंपरागत जीवनी के अनुसार उनके पिता राजा सुद्धोधन शाक्य राष्ट्र के प्रमुख थे। शाक्य जनजाति कई पुरातन जनजातियों में से एक थी। महात्मा बुद्ध का पारिवारिक नाम गौतम था। गौतम के नामकरण संस्कार में ही उन्हें सिद्धार्थ नाम दिया गया। 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह यशोधरा से हुआ। पिता की इच्छा थी कि सिद्धार्थ एक महान राजा बनें। उन्होंने सिद्धार्थ को धर्म, वेद-पुराणों से लेकर मानवीय जीवन के कष्टों की गहन शिक्षा प्रदान की।

परंतु अंत में सब निष्फल हुआ। वास्तविक जीवन लक्ष्यों की खोज हेतु 29 वर्ष की आयु में उन्होंने घर-परिवार और भव्य राजभवन त्याग दिया। वे एक अनिश्चित मार्ग पर बढ़ चले। यात्रा के दौरान उन्हें रोग-व्याधि, वृद्धावस्था से घिरे मनुष्यों और सार्वजनिक जीवन की कठिनाइयों-विसंगतियों को देखने का अवसर मिला तो वे मनुष्य-जीवन में उत्पन्न होनेवाली इन परिस्थितियों के प्राकृतिक कारक की खोज के लिए बेचैन हो उठे। उन्होंने एक तपस्वी का जीवन अंगीकार कर लिया। इस तरह सिद्धार्थ ने हमेशा के लिए राजभवन का परित्याग किया और एक भिक्षु बनने के लिए महाप्रयाण किया।

बुद्ध के रहते और उनके परिनिर्वाण के बाद भी अनेक भौतिकवादी उनकी पत्नी यशोधरा और बालक राहुल के प्रति चिंता दर्शाते हुए बुद्ध के निर्णय को अनुचित बताते हैं। ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि सिद्धार्थ ने यशोधरा और बालक को जंगल में नहीं छोड़ा था। उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज के जीवन से वैर व अलगाव भावना वश होकर गृहत्याग नहीं किया। गृहस्थ न होने में उनकी कोई प्रतियोगी इच्छा नहीं थी। जीवन रहस्य अनुसंधान की उनकी दार्शनिक इच्छा में उनका कोई स्वार्थ न था। उनका अभिज्ञान था कि जीवन के बाद मृत्यु के रहस्य को सुलझाने के लिए उन्हें अत्यंत बेचैन किए हुए था। जीवन-मृत्यु से मुक्ति के लिए वे आत्म-अनुसंधान करना चाहते थे। वे इसमें सफल भी हुए।

कालांतर से बुद्ध का एक संवेदनशील जीवन-दर्शन समाज में उभरता रहा। बुद्ध की तरह आत्मिक पवित्रता रखनेवाला कोई भी व्यक्ति यह दर्शन स्वीकार करता है कि परिवार की लालसा तथा उत्तरदायित्व का बोध तब ही उचित होगा, जब जीवन अमर हो अथवा गृहस्वामी, स्वामिनी तथा उनके बच्चों यानी एक पूरे परिवार का जीवन एक साथ ही समाप्त हो। इसके विपरीत परिवारीजनों का एक-एक कर अलग-अलग मृत्यु का वरण करना कितना अनुचित काल-सिद्धांत है। इस काल धारणा को बुद्ध ने चुनौती दी। इसके स्थान पर बुद्ध ने प्रयासों से एक प्रकार से जीवन के बाद भी अपने, अपने परिवार की कहीं किसी अंश रूप में उपस्थिति स्थापित की। शारीरिक रूप में सिद्धार्थ, यशोधरा तथा राहुल जीवन-पर्यंत अलग-अलग रहे, परंतु शरीर नश्वर होने के बाद भी उत्तरोत्तर संपूर्ण मानव जीवन के आत्मदर्शन में वे सभी आज तक एक साथ विचरण कर रहे हैं। यह सब बुद्ध के उस निर्णय से ही संभव हो सका, जो उन्होंने परिवार में बंधने की अपेक्षा उससे दूर भू-भागों में जीवन को ढूंढने के रूप में लिया।

सामान्य रूप में बुद्ध के जीवन सिद्धांतों की व्याख्या में धर्म, जाति, वर्ग, देशकाल आदि के सीमांकन किए गए हैं। जबकि वास्तव में वह संत तो भूलोक के किसी भी तरह के मानवजनित भेदों से बहुत दूर एक अपूर्व अवस्था में स्थिर था। वह जीवन को सामान्य मानवीय दृष्टि से नहीं देखते थे। उनकी दृष्टि में जीवन-मृत्यु के बीच से बहुत ऊपर उठकर सोच-विचार करने की साधना-क्षमता थी।

साधना करते हुए शरीर त्याग करना आत्मलब्धता को प्राप्त होना है। जीवन क्या है, यह प्रश्न हर्षातिरेक और पीड़ा-प्रताड़ना दोनों मनः स्थितियों में मानव के अंदर अवश्य कौंधते हैं। लेकिन जीवन का जो मूल उद्देश्य है, उसका ज्ञान हर्ष और पीड़ा दोनों अनुभवों से रिक्त होकर ही मिलता है। बुद्ध जीवन की अस्पष्टता, विडंबना के विचार से आंदोलित हुए। मनुष्य की वृद्धावस्था, रोगी काया देखकर वे अंतःस्थल में विचार करने लगे कि मानव की यह परिणति, दुर्गति ही होनी है तो परंपरागत भौतिक जीवन के इष्टतम लक्ष्य कैसे प्राप्त होंगे। शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करते-करते जीवन एक दिन जर्जर हो जाएगा।

यही होता आया है और संसार के अस्तित्व के बने रहने तक यही होता रहेगा। बुद्ध ने इसी बात पर विचार कर गृहस्थ त्यागा और संतत्व स्वीकार किया। फिर बुद्ध के विचार में यह भी नहीं था कि वह अपनी नई विचार-साधना के लिए कुछ त्याग कर रहे हैं या घर छोड़ रहे हैं।

यह तो एक स्वाभाविक घटना थी, जो जगताभ्युदय के लिए आध्यात्मिक तरीकों से घटित होनी ही थी। कोई भी व्यक्ति तत्व ज्ञान से ऐसे ही जुड़ सकता है। बुद्ध के विषय में विचार करते समय इस संसार के समस्त अनुभव-उद्भव- पराभव तिरस्कृत हो जाते हैं। बुद्ध का कोई भी अभिप्राय उनके लिए संग्रहणीय, प्रवचनीय, वर्णनीय नहीं था। वह अपने अध्ययन-शोध- साधना से स्वयं को भी प्रभावित करने की इच्छा नहीं रखते थे। उनके आत्म-साक्षात्कार में वैचारिकता- बौद्धिकता के आधार पर विश्व-विजय का अभिमान नहीं था। बुद्ध के त्याग-तप में से निकलकर जो मूल्य उनके अनुयायियों तथा सामान्य लोगों के लिए सीख बनते हैं, वे उन्हें अपनाने का आह्वान नहीं करते। बुद्ध ने अपने प्रवचन में हिंदू धर्म या उससे संबंधित विचारों, पूजा-पद्धतियों और दूसरे प्रतीकों का विरोध नहीं किया। वे तो हिंदू धर्म की ही एक आध्यात्मिक शाखा की गहराई से पड़ताल करते रहे। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनके सिद्धांतों के नाम पर राजनीति करने के लिए बौद्ध धर्म और अनेक ऐसी सैद्धांतिक संज्ञाएं प्रचलन में आ गईं, ज